Ianna Journal of Interdisciplinary Studies, EISSN: 2735-9891
Volume 7, Issue 1, 2025

भारत की अफ़गानिस्तान नीति: अमेरिकी वापसी के बाद रणनीतिक स्थान की खोज

Shailendra Singh Chauhan

Research scholar,
Shri Venkateshwara University, Gajraula, amroha, Uttar Pradesh
Email id: shailendra20172017@gmail.com

Dr kuldeep singh

Research supervisor
Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha, Uttar Pradesh
Email id: drkuldeepsingh1977@gmail.com

सार

2021 में अफ़गानिस्तान से अमेरिका की वापसी ने क्षेत्रीय भू–राजनीतिक परिदृश्य को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया, जिससे भारत को युद्धग्रस्त राष्ट्र के प्रति अपने दृष्टिकोण को फिर से निर्धारित करने के लिए प्रेरित किया। वापसी के बाद भारत की अफ़गानिस्तान नीति अपने सुरक्षा हितों की रक्षा करने, क्षेत्रीय प्रभाव को बनाए रखने और प्रतिद्वंद्वी अभिनेताओं, विशेष रूप से पाकिस्तान और चीन की उपस्थिति को संतुलित करने के लिए रणनीतिक स्थान की खोज से प्रेरित है। तालिबान के सत्ता में लौटने के बावजूद, भारत ने अफ़गानिस्तान में पैर जमाए रखने के लिए कूटनीतिक पहुंच, मानवीय सहायता और आर्थिक निवेश पर जोर देते हुए एक व्यावहारिक जुड़ाव रणनीति अपनाई है। औपचारिक राजनयिक उपस्थिति की अनुपस्थिति ने शुरू में चुनौतियों का सामना किया, लेकिन भारत की क्रमिक पुनः सहभागिता – काबुल में अपने दूतावास को फिर से खोलने और सहायता प्रदान करने के द्वारा चिह्नित – एक सतर्क लेकिन आवश्यक अनुकूलन को दर्शाती है। यह शोधपत्र भारत की विकसित हो रही अफ़गानिस्तान नीति के प्रमुख चालकों की जांच करता है, भू–राजनीतिक अनिवार्यताओं, सुरक्षा चिंताओं और इसके दृष्टिकोण को आकार देने वाले रणनीतिक हितों का विश्लेषण करता है। यह क्षेत्रीय स्थिरता और दक्षिण एशिया में इसकी व्यापक विदेश नीति के उद्देश्यों पर भारत की सहभागिता के निहितार्थों की भी पड़ताल करता है।

मुख्य शब्द: *भारत, अफ़गानिस्तान, नीति, अमेरिकी, रणनीतिक*

परिचय

अगस्त 2021 में अफ़गानिस्तान से अमेरिका की वापसी ने दक्षिण एशियाई भू–राजनीति में एक महत्वपूर्ण मोड़ ला दिया, जिससे एक शक्ति शून्यता पैदा हो गई जिसने क्षेत्रीय गतिशीलता को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया। तालिबान शासन की वापसी ने भारत के लिए नई सुरक्षा और कूटनीतिक चुनौतियाँ पैदा कीं, जिसने ऐतिहासिक रूप से विकास सहायता, व्यापार और रणनीतिक सहयोग के माध्यम से पिछली अफ़गान सरकारों के साथ मजबूत संबंध बनाए रखे थे। अफ़गान सरकार के तेज़ी से पतन और तालिबान के उदय के साथ, भारत को महत्वपूर्ण नीतिगत विकल्पों का सामना करना पड़ा – चाहे वह नई सरकार के साथ जुड़ना हो, प्रतीक्षा–और–देखो दृष्टिकोण अपनाना हो, या अफ़गानिस्तान में अपना प्रभाव बनाए रखने के लिए वैकल्पिक रणनीतियों की तलाश करनी हो। भारत की अफ़गानिस्तान नीति पारंपरिक रूप से रणनीतिक, आर्थिक और सुरक्षा चिंताओं के संयोजन से आकार लेती रही है। अफ़गानिस्तान की भारत की अस्थिर पश्चिमी सीमा से निकटता को देखते हुए, तालिबान

शासन के पुनरुत्थान ने आतंकवादी गतिविधियों में वृद्धि की आशंकाएँ पैदा कीं, विशेष रूप से लश्कर–ए–तैयबा और जैश–ए–मोहम्मद जैसे पाकिस्तान स्थित समूहों को शामिल किया। इसके अलावा, अफ़गानिस्तान में चीन की बढ़ती उपस्थिति और तालिबान के साथ पाकिस्तान के गहरे संबंधों ने भारत की क्षेत्रीय आकांक्षाओं के लिए अतिरिक्त चुनौतियाँ पेश कीं। शुरुआती हिचकिचाहट के बावजूद, भारत ने धीरे–धीरे एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया है, अपने रणनीतिक हितों को बनाए रखने के लिए मानवीय सहायता के साथ राजनयिक जुड़ाव को संतुलित किया है। काबुल में भारत के दूतावास को फिर से खोलना, तालिबान प्रतिनिधियों के साथ सीधी बातचीत और अफ़गान बुनियादी ढांचे में निरंतर निवेश एक अधिक अनुकूल और सतर्क नीति की ओर बदलाव का संकेत देता है। यह पत्र अमेरिकी वापसी के बाद के युग में भारत की विकसित हो रही अफ़गान रणनीति की प्रमुख प्रेरणाओं, चुनौतियों और निहितार्थों का पता लगाता है, क्षेत्रीय स्थिरता और भारत की व्यापक विदेश नीति के उद्देश्यों पर इसके प्रभाव का आकलन करता है।

अफ़गानिस्तान में संघर्षरू एक ऐतिहासिक अवलोकन

अफ़गानिस्तान लगभग चार दशकों से लंबे समय से संघर्ष का शिकार रहा है। इस अवधि में अफ़गानिस्तान में संघर्ष के मूल कारण मौलिक रूप से भिन्न रहे हैं। उथल–पुथल के शुरुआती वर्षों के दौरान, अफ़गानों ने खुद को विस्तारवादी सोवियत संघ के साथ संघर्ष में पाया। हिंसा का हालिया दौर मुख्य रूप से इस्लामी उग्रवाद के उदय की घटना से जुड़ा है, जिसका प्रभाव अफ़गानिस्तान की सीमाओं को पार कर गया है। दक्षिण, दक्षिण–पश्चिम और मध्य एशिया के चौराहे पर स्थित, अफ़गानिस्तान में संघर्ष ने समय के साथ पूरे क्षेत्र में अपने प्रभाव दिखाए हैं। लेकिन इन परिणामों में सबसे महत्वपूर्ण और कहीं अधिक महत्वपूर्ण अफ़गानिस्तान और उसके आसपास धार्मिक उग्रवाद का बढ़ना रहा है, जो पूरे क्षेत्र में शांति और स्थिरता के लिए खतरा है। अफ़गानिस्तान में संघर्ष की खासियत यह रही है कि इसने अपने दक्षिण एशियाई (पाकिस्तान और चीन में झिंजियांग) और मध्य एशियाई (उज़्बेकिस्तान) पड़ोसियों के बीच धार्मिक कट्टरवाद को 'निर्यात' किया है।

अफ़गानिस्तान के क्षेत्रीय पड़ोसियों ने भी देश में अशांति और उथल–पुथल को बढ़ावा देने में अपनी भूमिका निभाई है, और अफ़गानिस्तान के प्रति उनके विरोधी हितों ने भी निस्संदेह अफ़गानिस्तान में स्थायी शांति स्थापित करने में बाधा उत्पन्न की है। अफ़गानिस्तान ने खुद को अपने क्षेत्रीय पड़ोसियों के बीच प्रतिद्वंद्विता का शिकार पाया है, और अतीत में, महान औपनिवेशिक शक्तियों (ब्रिटिश और ज़ारिस्ट रूस) के बीच प्रतिस्पर्धा से भी पीड़ित रहा है। इन सभी कारकों ने सामूहिक रूप से अफ़गानिस्तान के लिए क्षेत्रीय शक्तियों या वैश्विक आधिपत्य से स्वायत्तता और गैर–हस्तक्षेप के साथ अपने आधुनिक इतिहास को रेखांकित करना मुश्किल बना दिया है। अफ़गान राजनीतिक और जातीय गुटों ने बाहरी शक्तियों के साथ जो संरक्षक–ग्राहक संबंध बनाए, उसने हमेशा अफ़गान पहेली को एक अंतरराष्ट्रीय आयाम प्रदान किया, और बाहरी हस्तक्षेप ने हमेशा अफ़गानिस्तान में संघर्ष को बढ़ाने का काम किया।

अफ़गानिस्तान में मौजूदा संघर्ष का अध्ययन अल–कायदा द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका पर 9/11 के हमलों के परिप्रेक्ष्य से किया जा सकता है। इन हमलों ने अफ़गानिस्तान में अन्यथा आंतरिक उथल–पुथल को पूरी दुनिया के लिए एक गंभीर सुरक्षा चिंता में बदल दिया, विशेष रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व वाले पश्चिम के लिए, जिसे अल–कायदा नेतृत्व ने स्पष्ट रूप से अपना मुख्य दुश्मन घोषित किया था। तालिबान के उदय ने 9/11 से पहले

भी पश्चिम में चिंताएँ बढ़ाई थीं, लेकिन महिलाओं के प्रति उनका रूढ़िवादी रवैया और अत्याचारी दृष्टिकोण ऐसे मुद्दे थे जो अफ़गानिस्तान की सीमाओं तक ही सीमित थे। तालिबान शासन को पश्चिम के लिए एक बहिष्कृत करने वाली बात अल–कायदा के साथ उनका बढ़ता जुड़ाव था, जिसके आतंकी मंसूबे अफ़गानिस्तान की सीमाओं को पार कर गए, जिसका सबूत 11 सितंबर के भयावह हमलों के रूप में सामने आया। ये हमले इस मायने में परिवर्तनकारी थे कि अफ़गानिस्तान ने अमेरिका के नेतृत्व वाले वैश्विक आतंक युद्ध (GWoT) के सामने आने में केंद्र की भूमिका निभाई।

यह ठीक वही बिंदु है जहां अफगानिस्तान के संदर्भ में पाकिस्तान की भूमिका और भी प्रमुख हो गई। भले ही सोवियत प्रायोजित कम्युनिस्ट शासन के खिलाफ एक लोकप्रिय विद्रोह के दिनों से ही पाकिस्तान अफगानिस्तान की घरेलू राजनीति में जटिल तरीकों से शामिल रहा हो; 9/11 के हमलों के बाद पाकिस्तान को अफगानिस्तान में एक अग्रणी राज्य और संयुक्त राज्य अमेरिका का एक प्रमुख गैर–नाटो सहयोगी बनने के लिए मजबूर होना पड़ा। उन दिनों यह आम धारणा थी कि तालिबान–अल कायदा गठबंधन के चंगुल से अफगानिस्तान की रक्षा के लिए पाकिस्तान का समर्थन हासिल करना अपरिहार्य था। पाकिस्तान की आधिकारिक नीतिगत स्थिति से पता चलता है कि उसने तालिबान को अपना संरक्षण छोड़ दिया है और वह अफगानिस्तान को लोकतंत्र और विकास के युग में लाने में संयुक्त राज्य अमेरिका की मदद करेगा। पीछे मुड़कर देखने पर, अब यह निष्कर्ष निकालना स्पष्ट लगता है कि पाकिस्तान समस्या का उतना ही हिस्सा रहा है जितना समाधान का। अफ़–पाक क्षेत्र से उत्पन्न होने वाले आतंकवादी खतरे को खत्म करने में संयुक्त राज्य अमेरिका की सहायता करने की पाकिस्तान की नीति सबसे अच्छी तरह से चुनिंदा रही। पाकिस्तान की एक मानकीकृत और एकसमान आतंकवाद विरोधी नीति के अनुरूप होने की अनिच्छा के परिणामस्वरूप अफगानिस्तान में संघर्ष लंबा खिंच गया। तालिबान के नेतृत्व वाले विद्रोह को विफल करने के लिए पाकिस्तान की ओर से अनिच्छा अफगानिस्तान में अंतहीन संघर्ष का मूल कारण बन गई, जिसने बदले में, अफगानिस्तान में अमेरिका के नेतृत्व वाले अभियान को अप्रभावी और निरर्थक बना दिया। अफगान अभियान की सफलता हमेशा से ही पाकिस्तान के सुरक्षा प्रतिष्ठान द्वारा बंधक बनाई गई थी, जो अफगानिस्तान को पाकिस्तान के रणनीतिक पिछवाड़े के रूप में देखता है और तालिबान को इस पर नियंत्रण पाने के लिए एक उपयुक्त संपत्ति के रूप में देखता है। तालिबान को बनाए रखने के लिए पाकिस्तान इतना निर्दयी रहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके नाटो सहयोगियों के पास वापसी की समय–सारिणी की घोषणा करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था क्योंकि यह उनके लिए स्पष्ट हो गया था कि पाकिस्तान के समर्थन के बिना तालिबान और अल–कायदा को हराने की कोशिश एक निरर्थक अभ्यास था जो आतंकवाद की समस्या (अफगानिस्तान में) के लक्षणों का इलाज करने और बीमारी के कारण और स्रोत को बरकरार रखने (पाकिस्तान में) पर केंद्रित था। इसलिए, अफगानिस्तान में संघर्ष अभी तक हल नहीं हुआ है।

जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका और उसके पश्चिमी सहयोगियों ने 2021 में अफ़गानिस्तान को छोड़ दिया, देश अभी भी कई विकट चुनौतियों से जूझ रहा है। इनमें शामिल हैंरू एक कमजोर सुरक्षा वातावरण, विदेशी उदारता पर अत्यधिक निर्भरता, दयनीय आर्थिक विकास, सामाजिक और जातीय विभाजन का बढ़ना, और सबसे महत्वपूर्ण बात, अब मामलों की कमान एक कट्टरपंथी शासन के हाथ में है। ये सभी चुनौतियाँ अफ़गानिस्तान के लिए खुद को एक स्थिर और शांतिपूर्ण राज्य के रूप में बनाए रखना एक कठिन कार्य की ओर इशारा करती

हैं। अफ़गानिस्तान में अमेरिका के नेतृत्व वाले मिशन की मौजूदगी के दौरान अफ़गानिस्तान ने जो ठोस प्रगति हासिल की है, उससे कोई इनकार नहीं कर सकता, फिर भी तालिबान के वास्तविक शासन के रूप में वापस आने से इन उपलब्धियों के उलट होने की आशंका है। अगर ऐसी स्थिति पैदा होती है, तो अफ़गानिस्तान पिछले तालिबान शासन और उससे पहले के गृहयुद्ध के वर्षों के दौरान अराजकता और अव्यवस्था जैसी भयावह स्थिति में वापस जा सकता है।

कार्यप्रणाली और सैद्धांतिक ढांचा

यह शोधपत्र अफ़गानिस्तान के प्रति भारत की विदेश नीति के विकास की दिशा का विश्लेषण करने के लिए गुणात्मक दृष्टिकोण का उपयोग करता है। यह इस बात की जांच करने का प्रयास करता है कि भारत की अफ़गान नीति में किस तरह से बदलाव आया और कौन से कारक – घरेलू, संरचनात्मक, व्यक्तिगत – उस बदलाव को प्रेरित करते हैं। अफ़गानिस्तान के संदर्भ में भारत की विदेश नीति के विकास को समझाने के लिए, शोधपत्र डेटा के प्राथमिक और द्वितीयक दोनों स्रोतों पर निर्भर करता है। प्राथमिक स्रोतों में सरकारों द्वारा जारी आधिकारिक विज्ञप्तियाँ, हस्ताक्षरित संधियों का पाठ और इन दोनों देशों में सत्तारूढ़ शासन के सदस्यों द्वारा की गई टिप्पणियाँ और टिप्पणियाँ शामिल हैं। द्वितीयक स्रोतों में विशेष रूप से भारत–अफ़गान संबंधों के विषय से संबंधित विद्वानों के लेख, टिप्पणियाँ और समाचार आइटम शामिल हैं। भारत–अफ़गानिस्तान संबंधों के प्रक्षेपवक्र की जाँच अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में नव–यथार्थवादी सिद्धांत के सैद्धांतिक ढांचे के भीतर की गई है। नव–यथार्थवादी, विशेष रूप से केनेथ वाल्ट्ज, तर्क देते हैं कि राज्य, तर्कसंगत अभिनेता के रूप में, अपनी और दूसरों की क्षमताओं का आकलन करने के बाद ही किसी विशेष तरीके से व्यवहार करते हैं। नव–यथार्थवाद का मानना है कि अराजक माहौल में राज्यों को खुद की रक्षा करने के लिए छोड़ दिया जाता है, जिसमें उनके पास अपने अस्तित्व की रक्षा करने और अन्य राष्ट्रीय हितों को पूरा करने के लिए स्वयं सहायता ही एकमात्र उपलब्ध साधन है। इस शोधपत्र को नव–यथार्थवादी ढांचे के भीतर रखने से अफ़गानिस्तान में प्रभाव हासिल करने की भारत की चाहत के पीछे के तर्क को समझने में मदद मिलती है, क्योंकि काबुल के साथ सौहार्दपूर्ण संबंधों को हमेशा नई दिल्ली ने पाकिस्तान को अपने भारत विरोधी मंसूबों के लिए अफ़गान क्षेत्र का उपयोग करने से रोकने के साधन के रूप में देखा है। चूँकि नव–यथार्थवाद, शास्त्रीय यथार्थवाद की तरह, मानता है कि संघर्ष अंतरराष्ट्रीय राजनीति का एक अनिवार्य तत्व है, इसलिए अफ़गानिस्तान में भारत–पाक प्रतिद्वंद्विता के उद्भव को समझना और भी आसान हो जाता है। चूँकि भारत और पाकिस्तान ने अपनी स्थापना के समय से ही एक शत्रुतापूर्ण संबंध साझा किया है, इसलिए यह प्रतिद्वंद्विता अफ़गानिस्तान में भी सामने आई है।

खोई हुई जगह को बचाना: 9/11 के बाद से भारत की अफ़गानिस्तान नीति

यह अक्सर कहा जाता है कि भारत–अफगानिस्तान संबंध भारत के स्वतंत्र राष्ट्र–राज्य के रूप में उभरने से पहले के हैं। पिछली कई शताब्दियों के दौरान, भारत (या, अधिक सटीक रूप से, वे क्षेत्र जो अब सामूहिक रूप से भारत का निर्माण करते हैं) और अफगानिस्तान के बीच व्यापक आर्थिक और सांस्कृतिक संबंध रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्त करने के तुरंत बाद, भारत ने अफगानिस्तान के साथ अपने संबंधों को बनाए रखने की पहल की। यह 4 जनवरी, 1950 को मैत्री संधि (भारत सरकार और अफगानिस्तान की शाही सरकार के बीच मैत्री की संधि, 1950) पर हस्ताक्षर करके किया गया था। इस संधि में दोनों देशों के बीच 'अपने लोगों के साझा लाभ और अपने–अपने देशों के विकास के उद्देश्य से' चिरस्थायी शांति और मित्रता के

लिए प्रतिबद्धता की परिकल्पना की गई थी (विदेश मंत्रालय, भारत सरकार, 2015)। इस संधि ने दोनों देशों के बीच मजबूत और सौहार्दपूर्ण संबंधों के लिए एक मजबूत नींव रखी। इसलिए, भारत के सभी अफगान सरकारों के साथ उत्कृष्ट राजनयिक संबंध रहे हैं, जिनमें राजा जाहिर शाह से लेकर बाद की सभी सरकारें शामिल हैं, जिनमें दिसंबर 1979 में सोवियत आक्रमण के बाद देश पर शासन करने वाली सरकारें भी शामिल हैं।

एक और दिलचस्प बात यह है कि भारत–अफ़गानिस्तान संबंधों को शुरू से ही मज़बूत बनाने में मदद मिली। जिस समय पाकिस्तान अस्तित्व में आया, नई दिल्ली–काबुल संबंधों को बढ़ावा मिला क्योंकि दोनों देशों ने इस्लामाबाद के साथ क्षेत्रीय विवाद साझा किए थे। इसके अलावा, कश्मीर विवाद पर पाकिस्तान के रुख के प्रति काबुल के विरोध ने भारत–अफ़गानिस्तान संबंधों को मज़बूत किया। सोवियत विरोधी युद्ध के उथल–पुथल भरे दशक के दौरान भी भारत ने अफ़गानिस्तान की सहायता करना जारी रखा। भारत ने सिंचाई, कृषि और जलविद्युत परियोजनाओं सहित विकासात्मक गतिविधियों में निवेश के ज़रिए अफ़गानिस्तान में अपना प्रभाव बनाए रखा।

फिर भी, सोवियत हस्तक्षेप के दशक में भारत की अफ़गान नीति एक ओर गुटनिरपेक्षता के सिद्धांतों और दूसरी ओर भू–राजनीतिक लाभ प्राप्त करने के उत्साह के बीच झूलती रही। शुरू में, भारत ने अफ़गानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप का विरोध किया और अफ़गानिस्तान से सोवियत सैनिकों की वापसी का आह्वान किया। हालाँकि, यह महसूस करते हुए कि अफ़गानिस्तान में पाकिस्तान समर्थित मुजाहिदीन गुटों के उत्थान के कारण सोवियत सैनिकों की वापसी पाकिस्तान के हितों की पूर्ति करेगी, भारत ने अफ़गानिस्तान से सोवियत संघ की पूर्ण वापसी के आह्वान वाले प्रमुख संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावों से दूर रहने का विकल्प चुना। इसलिए, भारत ने अफ़गानिस्तान पर सोवियत कब्जे की ओर से आँखें मूंद लीं क्योंकि उसे डर था कि अफ़गानिस्तान में मुजाहिदीन की जीत से पाकिस्तान को इस क्षेत्र में अधिक भू–राजनीतिक लाभ प्राप्त करने में मदद मिलेगी (शर्मा, 2011)। इसके अलावा, पाकिस्तान को अमेरिका से मिलने वाली सैन्य सहायता के पैमाने और इस्लामाबाद के गुप्त परमाणु हथियार कार्यक्रम की ओर से आँखें मूंद लेने की अमेरिका की नीति ने उस दशक के दौरान भारत की अफ़गान नीति को आकार दिया। भारत की मुख्य चिंता पाकिस्तान के साथ अमेरिका के सुरक्षा संबंधों को पुनर्जीवित करना था, जिसके बारे में भारत का तर्क था कि इससे क्षेत्र में सत्ता का प्राकृतिक संतुलन इस्लामाबाद के पक्ष में बदल सकता है। वारसॉ संधि ब्लॉक के बाहर भारत एकमात्र ऐसा देश था जिसने अफ़गानिस्तान में सोवियत समर्थित शासनों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखे (रईस, 1993)। उस दशक के दौरान गुटनिरपेक्षता की बयानबाजी के बजाय भू–राजनीतिक वास्तविकताओं ने भारत की अफ़गान नीति को निर्देशित किया।

अफ़गानिस्तान से सोवियत सैनिकों की वापसी और नजीबुल्लाह सरकार (सोवियत द्वारा स्थापित अंतिम सरकार) के पतन के बाद भी, भारत काबुल में मुजाहिदीन के नेतृत्व वाली नई सरकार के साथ घुलमिलकर अपना प्रभाव बनाए रखने में कामयाब रहा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अफ़गानिस्तान अब मुजाहिदीन के सीधे नियंत्रण में था, जिनके पाकिस्तान की सुरक्षा और खुफिया प्रतिष्ठानों के साथ गहरे संबंध थे, भारत ने अफ़गानिस्तान के साथ अपने संबंधों को बनाए रखने के लिए एक बहुत ही अनोखी, यद्यपि सिद्धांतहीन, नीति बनाई। इस नीति के मूल तत्व भारत के तत्कालीन प्रधान मंत्री नरसिम्हा राव द्वारा निर्धारित किए गए थे, और यह 196 में तालिबान शासन के आगमन तक भारत की

अफ़गानिस्तान नीति की आधारशिला बनी रही। यह नीति पाँच प्रमुख तत्वों पर आधारित थी:

1ण भारत को 'सभी मुजाहिदीन समूहों के साथ बिना किसी डर या पक्षपात के व्यवहार करना चाहिए, और इस्लामवाद के उग्रवाद के बावजूद भारत से मिलने के इच्छुक हर व्यक्ति से संपर्क स्थापित किया जाना चाहिए।'

2ण भारत 'काबुल में जो भी सत्ता में है, उसके साथ व्यवहार करेगा, और नई दिल्ली का ध्यान एक ऐसी मैत्रीपूर्ण सरकार बनाने पर होगा जो भारत के महत्वपूर्ण हितों और चिंताओं के प्रति संवेदनशील हो।'

3ण भारत 'काबुल में सरकार के साथ अपना व्यवहार करेगा, चाहे वह पाकिस्तान या उसकी सुरक्षा एजेंसियों के साथ कितनी भी निकटता क्यों न हो।'

4ण भारत 'किसी भी मुजाहिदीन समूह को हथियार नहीं देगा, न ही भारत किसी को बहिष्कृत करेगा।'

5ण भारत अपनी क्षमताओं और संसाधनों के भीतर अफगानिस्तान के आर्थिक कल्याण में योगदान देने पर ध्यान केंद्रित करेगा (भद्रकुमार, 2011)।

हालांकि इस नीति का उद्देश्य उस समय अफगानिस्तान में अव्यवस्था और अनिश्चितता को दूर करना था, लेकिन यह निश्चित रूप से भारत के हित में नहीं था, क्योंकि विभिन्न मुजाहिदीन गुटों के बीच हिंसा और आंतरिक संघर्ष ने नई दिल्ली और काबुल के बीच सार्थक जुड़ाव के लिए बहुत कम जगह छोड़ी। वास्तव में, काबुल और उसके आसपास भारी गोलाबारी के कारण भारत को कई मौकों पर अपना दूतावास बंद करना पड़ा। 1996 में तालिबान के आगमन के साथ ही संबंध पूरी तरह से रुक गए। तालिबान का इतनी तेजी और सफलता के साथ उदय अफगानिस्तान में अंतहीन संघर्ष के साथ पाकिस्तान की अपनी बेचौनी को दर्शाता है। पाकिस्तान तालिबान से जो चाहता था, वह विभिन्न मुजाहिदीन गुटों के बीच वर्षों से चल रहे संघर्ष को समाप्त करना था ताकि एक व्यवस्थित अफगानिस्तान का उपयोग संसाधन संपन्न मध्य एशियाई राज्यों तक पहुँचने के लिए किया जा सके। तालिबान शासन के तहत, भारत ने पिछले गृहयुद्ध के वर्षों के दौरान जो भी थोड़ा बहुत प्रभाव बनाए रखा था, उसे भी खो दिया। तालिबान युग ने भारत–अफगानिस्तान संबंधों के इतिहास में एक कूटनीतिक ब्लैक होल को चिह्नित किया (पालीवाल, 2015)। 9/11 हमलों के जवाब में अमेरिका के नेतृत्व वाले गठबंधन द्वारा 2001 के अंत में तालिबान को हटाए जाने के बाद, भारत ने अफ़गानिस्तान के साथ अपने राजनयिक संबंधों को नवीनीकृत करने में तेज़ी दिखाई। करज़ई द्वारा अफ़गानिस्तान की बागडोर संभालने के तुरंत बाद, भारत के विदेश मंत्री जसवंत सिंह अंतरिम सरकार के उद्घाटन में भाग लेने और भारतीय दूतावास को फिर से खोलने के लिए काबुल गए, जिसे 1996 में तालिबान द्वारा काबुल पर कब्ज़ा करने की पूर्व संध्या पर बंद कर दिया गया था। तब से, अफ़गानिस्तान के साथ भारत के संबंधों में काफ़ी सुधार हुआ है, और कई कारकों ने द्विपक्षीय राजनयिक संबंधों के नवीनीकरण और कायाकल्प में मदद की है। सबसे पहले, भारत ने 9/11 के बाद की अपनी अफ़गान नीति को 2001 के बॉन समझौते के तहत अनिवार्य सिद्धांतों के साथ पूरी तरह से तालमेल में रखा। दूसरे, पाकिस्तान के विपरीत, भारत–अफ़गान संबंधों में एक सन्निहित और विवादित सीमा के अस्तित्व से बाधा नहीं आई। तीसरा, भारत काबुल सरकार से आधिकारिक समर्थन प्राप्त करने में सक्षम था,

क्योंकि उत्तरी गठबंधन के कई सदस्य, जिन्हें भारत ने 1990 के दशक के मध्य में समर्थन दिया था, अंतरिम सरकार के सदस्य बन गए या प्रभावशाली प्रांतीय पदों पर आसीन हो गए (पंत, 2011)।

तालिबान की वापसी: फिर से पुरानी यादें ताज़ा हो गईं

अफ़गानिस्तान में अमेरिका के नेतृत्व में लगभग दो दशक से चल रहा 'राज्य और राष्ट्र निर्माण' अभियान 15 अगस्त, 2021 को विफल हो गया, जब तालिबान ने राजधानी काबुल पर कब्ज़ा कर लिया और अशरफ़ ग़नी के नेतृत्व वाली नागरिक सरकार को हटा दिया। अफ़गानिस्तान में एक तरह की पुरानी यादों का माहौल था, क्योंकि तालिबान ने पूरे अफ़गानिस्तान पर कब्ज़ा कर लिया और सफलतापूर्वक जीत हासिल कर ली, जो 1996 में देश पर उनके पहले के कब्ज़े जैसा था। इस बार, उनके अभियान की विशेषता थी कि वे बहुत तेज़ी से आगे बढ़े और बहुत कम खून–खराबा हुआ। कई विश्लेषकों ने लंबे समय से अफ़गान सुरक्षा बलों की क्षमता के बारे में अपनी शंका व्यक्त की थी, जो विदेशी युद्ध समर्थन के अभाव में तालिबान के खतरे को नियंत्रण में रखने में सक्षम नहीं थे। 15 अगस्त, 2021 को, अफ़गानिस्तान के विशेषज्ञों को यह समझना और समझाना मुश्किल हो गया कि अफ़गान सुरक्षा बल पूरी तरह से अव्यवस्थित क्यों थे, एक सभ्य लड़ाई लड़ने में भी असमर्थ और अनिच्छुक क्यों थे। इसका मतलब यह था कि तालिबान बहुत कम या बिना किसी प्रतिरोध के विशाल क्षेत्रीय लाभ हासिल करने में सक्षम थे।

तालिबान का यह तूफानी अभियान अफ़गानिस्तान से अमेरिकी सैनिकों की वापसी के पीछे टिका हुआ था। 8 जुलाई, 2021 को राष्ट्रपति बिडेन की घोषणा कि संयुक्त राज्य अमेरिका 31 अगस्त, 2021 तक अपने सभी सैनिकों को वापस ले लेगा, ने तालिबान को अपना विजय अभियान शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया। इससे पहले, अप्रैल 2021 में, राष्ट्रपति बिडेन ने अमेरिकी सैनिकों की वापसी के लिए 11 सितंबर, 2021 (9/11 हमलों की 20वीं वर्षगांठ) की समय सीमा तय की थी। हालाँकि, अफ़गानिस्तान में बिगड़ती सुरक्षा स्थिति ने बिडेन प्रशासन को अपने सैनिकों की वापसी की समय सीमा को आगे बढ़ाने के लिए मजबूर किया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने 30 अगस्त, 2021 को अपने सैनिकों की वापसी पूरी की, जिससे बीस साल का युद्ध समाप्त हो गया, जो अंततः उस विरोधी द्वारा देश पर पूर्ण कब्ज़ा करने के साथ समाप्त हुआ, जिसके साथ अमेरिकी सेना ने दो दशक तक लड़ाई लड़ी थी।

राष्ट्रपति बिडेन ने अफ़गानिस्तान से अमेरिकी सैनिकों की वापसी के पीछे के तर्क को समझाते हुए तर्क दिया कि "अब कोई औचित्य नहीं है – अगर कभी था भी – यह मानने का कि संयुक्त राज्य अमेरिका की सैन्य उपस्थिति अफ़गानिस्तान को एक स्थिर लोकतंत्र में बदल सकती है" (सेंगर और शियर, 2021)। अफ़गानिस्तान में 20 साल तक चली अमेरिकी (और अन्य सहयोगी देशों की) मौजूदगी न तो एक मजबूत, लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना में मदद कर सकी और न ही यह उस विद्रोह को हरा सकी जिसे 2001 के अंत में अमेरिकी हस्तक्षेप शुरू होने के कुछ महीनों के भीतर ही मृत और अप्रचलित माना गया था। इसका अंतिम परिणाम यह है कि अफ़गानिस्तान एक ऐसे शासन के अधीन है, जिससे मुक्ति पाना अफ़गानिस्तान में अमेरिकी हस्तक्षेप के घोषित उद्देश्यों में से एक था।

1996 में, जब तालिबान ने तत्कालीन उत्तरी गठबंधन के साथ भीषण लड़ाई के बाद काबुल शहर पर कब्ज़ा कर लिया, तो भारत को अफ़गानिस्तान में अपना प्रभाव क्षेत्र बनाए रखने के लिए जगह की कमी महसूस हुई। चूँकि भारत ने उत्तरी गठबंधन के साथ एक कामकाजी संबंध स्थापित किया था, जिसमें मुख्य रूप से गैर–पश्तून गुट (ताजिक, उज़बेक, हज़ारा)

शामिल थे, पिछले गृहयुद्ध के वर्षों के दौरान, पश्तून–प्रभुत्व वाले तालिबान शासन का उदय नई दिल्ली के लिए एक दुःस्वप्न साबित हुआ। तालिबान भारत के प्रति अपनी दुश्मनी के बारे में स्पष्ट थे क्योंकि गृहयुद्ध के वर्षों के दौरान यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया था कि नई दिल्ली ने तालिबान विरोधी गुटों (जो अक्सर गैर–पश्तून चरित्र के होते थे) को काबुल पर तालिबान को कब्ज़ा करने से रोकने के लिए पैसे और हथियार मुहैया कराए थे। भारत ने पश्तून विरोधी उत्तरी गठबंधन के साथ संबंध स्थापित किए थे ताकि अफ़गानिस्तान के तालिबान के नियंत्रण में आने की संभावना को नकारा जा सके, जिसे भारत पाकिस्तानी सुरक्षा प्रतिष्ठान का छद्म मानता था। 1996 में तालिबान के सत्ता पर कब्ज़ा करने के बाद, भारत को अफ़गानिस्तान में अपने दूतावास और वाणिज्य दूतावास बंद करने पड़े। तालिबान शासन के तहत, भारत ने पिछले गृहयुद्ध के वर्षों के दौरान जो थोड़ा–बहुत प्रभाव बनाए रखा था, उसे भी खो दिया। तालिबान युग ने भारत–अफ़गानिस्तान संबंधों के इतिहास में एक कूटनीतिक ब्लैक होल को चिह्नित किया (पालीवाल, 2015)।

अफ़गानिस्तान पर तालिबान का कब्ज़ा: भारत के लिए भविष्य का रास्ता

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अफगानिस्तान में वास्तविक शासक के रूप में तालिबान की वापसी भारत के लिए एक अशुभ घटना है। यह देखते हुए कि अफगानिस्तान के प्रति भारत के दृष्टिकोण को ऐतिहासिक रूप से पाकिस्तान के खिलाफ शून्य–योग गतिशीलता के रूप में देखा गया है, जिसमें एक पक्ष के नुकसान में दूसरे के लिए लाभ शामिल है, तालिबान की वापसी का मतलब है कि भारत के पक्ष ने खेल खो दिया है और पाकिस्तान काबुल में शासन परिवर्तन के लाभों को प्राप्त करने के लिए पूरी तरह तैयार है। जबकि भारत अफगानिस्तान से अपने राजनयिक मिशन और नागरिकों को निकालने के कठिन कार्य से जूझ रहा था, पाकिस्तान की सुरक्षा और विदेश नीति प्रतिष्ठानों में उत्साह की भावना व्याप्त थी। अफगानिस्तान पर तालिबान के कब्जे पर इस्लामाबाद की प्रतिक्रिया पश्चिमी राजधानियों में निराशा के विपरीत थी। प्रधान मंत्री इमरान खान ने पाकिस्तान में उपलब्धि की भावना का सार तब पकड़ा जब उन्होंने जोर देकर कहा कि ष्उनकी ख्तालिबान की, जीत ने दिखाया है कि अफगानों ने "गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ दी हैं" (द हिंदू, 2021)। पाकिस्तान की विजयोन्माद भावना एक बार फिर उस समय प्रदर्शित हुई जब पाकिस्तान के इंटर–सर्विसेज इंटेलिजेंस (आईएसआई) प्रमुख लेफ्टिनेंट जनरल फैज हमीद ने काबुल में अंतरिम सरकार के गठन से पहले वरिष्ठ तालिबान नेतृत्व से मुलाकात करने के लिए काबुल का दौरा किया।

आश्चर्य की बात नहीं है कि भारत अफ़गानिस्तान में हो रही इन घटनाओं को देखकर निराश हुआ। अगर भारत की अदूरदर्शी अफ़गान नीति नहीं होती और अगर नई दिल्ली ने तालिबान के साथ संवाद के चौनल खोले होते (जब पश्चिम खुद उनके साथ शांति वार्ता को गंभीरता से आगे बढ़ा रहा था), तो अगस्त 2021 में भारत को रणनीतिक हार का अहसास नहीं होता। हालाँकि, यह सब पीछे मुड़कर देखने पर ही लगता है। सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा यह हैरू भारत अपनी अफ़गान नीति को कैसे फिर से तैयार कर सकता है ताकि तालिबान के सत्ता में रहने के बावजूद अफ़गानिस्तान में अपनी रणनीतिक उपस्थिति को बनाए रखा जा सके? इसका उत्तर सरल हैरू नई दिल्ली को तालिबान के साथ जुड़ने की ज़रूरत है। इस दिशा में नई दिल्ली ने कुछ उल्लेखनीय कदम उठाए हैं। जब संयुक्त राज्य अमेरिका काबुल से अपने सैनिकों को निकालने वाला था, तब भारत की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने तालिबान को एक राज्य अभिनेता के रूप में मान्यता देने वाला प्रस्ताव पारित किया (रॉय, 2021)। प्रस्ताव पर नकारात्मक वोट का मतलब नई दिल्ली के लिए तालिबान का पक्ष लेने

की संभावना कम हो जाती। विदेशी सैनिकों की जल्दबाजी में वापसी और काबुल में पश्चिमी दूतावासों के बंद होने से अफ़गानिस्तान के लिए मुश्किलें खड़ी हो गई हैं, जिसे अब तक पश्चिम से भारी वित्तीय सहायता मिल रही थी। पश्चिमी सहायता के अभाव में, साथ ही फसल के मौसम में आई गिरावट के कारण अफ़गान अर्थव्यवस्था चरमराने लगी, और खाद्यान्न की कमी तालिबान शासन के सामने गंभीर चुनौतियों में से एक बन गई। अपनी दशकों पुरानी नागरिक–केंद्रित रणनीति को ध्यान में रखते हुए, भारत ने अफ़गानिस्तान को खाद्य सहायता की घोषणा करने में कोई देरी नहीं की। भारत ने घोषणा की कि वह अफ़गानिस्तान को 50,000 मीट्रिक टन गेहूँ देगा। वास्तव में, भारत ने अफ़गानिस्तान में गेहूँ के वितरण की व्यवस्था करने के लिए संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य कार्यक्रम (WFP) के साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए हैं। भारत पहले ही गेहूँ की तीन खेपें (कुल मिलाकर लगभग 6500 मीट्रिक टन) भेज चुका है। रोम में मुख्यालय वाले WFP ने भारत की सहायता को एक "ऐतिहासिक" बताया और अफ़गानिस्तान के लोगों की सहायता के लिए "गेहूँ के उदार योगदान" के लिए नई दिल्ली को धन्यवाद दिया (हैदर, 2022)। मानवीय चरित्र के अलावा, भारत की खाद्य सहायता का उद्देश्य नई दिल्ली के लिए तालिबान शासन के साथ सीधे संपर्क की शुरुआत करने का रास्ता बनाना भी था। भारत की गेहूं आपूर्ति को अफ़गानिस्तान में तालिबान सहित कई देशों से काफ़ी सराहना मिली। एक पारस्परिक और सुलह के उपाय के रूप में, तालिबान ने काबुल में भारतीय दूतावास के लिए एक सुरक्षित वातावरण प्रदान करने का वादा किया। तालिबान के लिए, भारत के दूतावास के खुलने का मतलब अफ़गानिस्तान में वैध शासन के रूप में देखे जाने की दिशा में एक कदम आगे बढ़ना होगा। जितने ज़्यादा देश तालिबान के साथ जुड़ेंगे, उतनी ही ज़्यादा वैधता उसे मिलेगी।

निष्कर्ष

पिछले कई दशकों में भारत ने अफ़गानिस्तान के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध विकसित करने में बहुत ज़्यादा कूटनीतिक ऊर्जा और वित्तीय संसाधन खर्च किए हैं। 2001 के अंत में तालिबान शासन के पतन के बाद से, भारत अफ़गानिस्तान के लिए एक मज़बूत वित्तीय और मानवीय सहायता प्रदाता बन गया है। पिछले दो दशकों में अफ़गानिस्तान में भारत द्वारा अर्जित की गई सारी सद्भावना खो जाने का जोखिम है, अगर नई दिल्ली द्वारा तालिबान के साथ बातचीत करने के लिए तुरंत कार्रवाई नहीं की जाती है। उदाहरण के लिए, हज़ारों अफ़गान नागरिक जिन्हें भारत सरकार ने भारत में अध्ययन करने के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की थी, वे अभी भी भारत सरकार की अफ़गान रणनीति से निराश हैं। ये छात्र सिर्फ़ इसलिए भारत नहीं लौट सकते क्योंकि उन्हें वीज़ा नहीं मिल पा रहा है। अगर भारतीय दूतावास फिर से खोला जाता, तो सीमित क्षमता के साथ भी, ये छात्र अपनी पढ़ाई पूरी करने के लिए भारत लौट आते। इसके अलावा, तालिबान के साथ बातचीत करने का मतलब उनके विश्वदृष्टिकोण का समर्थन करना नहीं है। बल्कि, बातचीत के ज़रिए, भारत या दूसरे देश भी अफ़गानिस्तान में विकास प्रक्रियाओं को फिर से शुरू करने में हिस्सा ले सकते हैं। तालिबान के साथ जुड़ना एक व्यापक आधार वाली सरकार के लिए ज़मीन तैयार करने में भी सहायक साबित हो सकता है, जिसे अंतरराष्ट्रीय समुदाय अफ़गानिस्तान में निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में अन्य जातीय समूहों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए एक सम्मानजनक दृष्टिकोण के रूप में देखता है। भारत को अफ़गानिस्तान के अन्य क्षेत्रीय पड़ोसियों के साथ मिलकर तालिबान के साथ समझ विकसित करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि उन्हें कूटनीतिक मान्यता प्राप्त

करने के साधन के रूप में एक समावेशी सरकार के गठन को स्वीकार करने के लिए प्रभावित किया जा सके। इसके अलावा, भारत को व्यक्तिगत रूप से और सार्क और शंघाई सहयोग संगठन जैसे क्षेत्रीय समूहों के हिस्से के रूप में तालिबान के साथ बातचीत को सुविधाजनक बनाने की कोशिश करनी चाहिए ताकि सरकार में अल्पसंख्यक जातीय गुटों से संबंधित प्रतिनिधियों को शामिल करने के लिए उन पर पर्याप्त दबाव डाला जा सके।

संदर्भ

[1] अलजजीरा (2022) तालिबान ने पाकिस्तान रॉकेटों से मारे गए नागरिकों पर चेतावनी जारी dhA https:@@www-aljazeera-com@news@2022@4@16@pakistani&troops&killed&in&armed&ambush&near&afghanistan&border- 15 जून 2022 को एक्सेस किया गया

[2] भद्रकुमार एमके (2011) मनमोहन सिंह ने अफ़गान नीति को फिर से तय किया। द हिंदू। https:@@www-thehindu-com@opinion@lead@manmohan&singh&resets&afghan&policy@article2021653-ece- 10 जुलाई 2019 को एक्सेस किया गया

[3] भटनागर ए, जॉन डी (2013) अफ़गानिस्तान और मध्य एशिया तक पहुँचनारू भारत के लिए चाबहार का महत्व। ऑब्ज़र्वर रिसर्च फ़ाउंडेशन के माध्यम से miyCèkA https:@@www-orfonline-org@wp&content@uploads@2013@11@specialreport-pdf- 24 जुलाई 2018 को एक्सेस किया गया

[4] बिजनेस स्टैंडर्ड (2018) भारत अफगानिस्तान को पांचवां सबसे बड़ा दानदातारू आधिकारिक। https:@@www-business&standard-com@article@pti&stories@india&fifth&largest&donor&to&afghanistan&official&118062001344&1-html- 17 सितंबर 2019 को एक्सेस किया गया

[5] चंद्रा ए (2007) भारत और अफ़गानिस्तानरू आर्थिक संबंधों का नवीनीकरण। वारिकू के (संपादक) अफ़गानिस्तानरू चुनौतियाँ और अवसर, खंड 2. पेंटागन प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 182–183

[6] गनाई आर (2013) अफ़गानिस्तान में शांति और सुलहरू आगे का रास्ता। जर्नल ऑफ़ पॉलिटिकल स्टडीज़ 8:27–45

[7] हैदर एस (2015) मोदी काबुल पहुंचे। द हिंदू। https:@@www-thehindu-com@news@national@Modi&reaches&Kabul@article60282570-ece- 11 अप्रैल 2019 को एक्सेस किया गया।

[8] पालीवाल ए (2015) भारत की तालिबान दुविधारू नियंत्रित करना या संलग्न करना? जे स्ट्रैटेजिक स्टड 40(1–5):35–67

[9] सिद्दीक ए (2022) अफ़गानिस्तान के अंदर पाकिस्तान के घातक हवाई हमलों से तालिबान के साथ तनाव बढ़ा है। https:@@www-rferl-org@a@pakistan&air&strikes&afghanistan&taliban&relations @31814993-html- 5 मई 2022 को एक्सेस किया गया

[10] सुब्रमण्यन एन (2021) कोई भी पड़ोसी नहीं बदल सकता...सभी के हित में सह–अस्तित्व में रह सकते हैं: तालिबान ने भारत से बदलती रेत पर कहा। द इंडियन एक्सप्रेस। https:@@indianeÛpress-com@article@india@none&can&change&neighbours&can&coeÛist&in&interest&of&all&taliban&to&india&on&shifting&sands&7366856@ 11 जुलाई 2021 को एक्सेस किया गया

[11] द हिंदू (2021) अफ़गानों ने 'गुलामी की बेड़ियाँ' तोड़ दी हैंरू पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान। https:@@www-thehindu-com@news@international@afghans&have&broken&shackles&of&slavery&pak&pm&imran&khan@article35939794-ece- 12 सितंबर 2022 को एक्सेस किया गया

[12] राइट टी, स्टैनकाटी एम (2011) करजई ने भारत यात्रा के दौरान भारत के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किए। वॉल स्ट्रीट जर्नल। https:@@www-wsj-com@articles@SB10001424052970203791904576610923980017098- 12 अक्टूबर 2019 को एक्सेस किया गया।